ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-1* Issue-8* September-2016
Innovation The Research Concept

मोहन राकेश के साहित्य में व्यवस्थागत विसंगतियाँ

सारांश

मोहन राकेश स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य के ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपने समय–सच, आधुनिक मानव जीवन में यथार्थ एवं इर्द–गिर्द पसरे परिवेश को और उसके खॉटी सत्य को सूक्ष्मता से देखा, पकड़ा और उसका चित्रण किया। परिवेश की पृवृत्तियों, क्रान्तियों–आक्रान्तियों और उसमें बजबजाते, घुटते और थक के पलायन कर जाते मानव के चित्र मोहन राकेश के साहित्य में प्रमुखता से दिखाई पड़ते है। परिवेश मानव को पूरी तरह या कहें कि बुरी तरह प्रभावित करता है, वैयक्तिक तौर पर भी और सामाजिक तौर पर भी। और यह प्रभाव कई–कई स्तरों पर, कई–कई चित्रों में राकेश के साहित्य में अंकित हुआ हैं।

मुख्य शब्दःसम्वेदना, अवसरवादिता, भविष्यहीन, आभ्य, प्रतीकात्मक औपन्य, ''आनुशंगिक सामन्तशाही, रंगिणी–संगिणी ,उपादेयता, औषधियॉ, समर्पित शांधार्थी, अवसरवादिता एवं मूल्यहीनता, संवेदनशीलता, निष्क्रियता,अस्मिता, अमानुषिक, षड्यन्त्रकारी, सार्वभौमिक,दुखान्तों, प्रतिक्रियास्वरूप, निकम्मी, अनिश्चयात्मकता,प्रतीकात्मकता

रेखा
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग
सिंघानियां युनिवर्सिटी,
पचेरी बडी, झुन्झुनू,
राजस्थान

प्रस्तावना

मोहन राकेश के अधिकांश पात्र आधुनिक सम्वेदना को वहन करते वे आदमी है जो समस्त प्रखरता एवं बौद्धिकता के पश्चात् भी विचलन का शिकार हो जाते है। यह व्यक्तित्व विचलन, कुण्ठा, द्वन्द्व, हताशा, अवसाद के साथ ही बेईमानी, धूर्तता व अवसरवादिता के रूप में भी होता है। भविष्यहीन भविष्य, खण्डित वर्तमान और छद्म आदर्शो वाले छूछे अतीत में जूझते मारव को अपने अस्तित्व पर गहराते संकटों का सामना करना है, उसी तन्त्र में सफल होकर जीना हैं। प्रश्न यह है कि क्या व्यवस्थागत विसंगतियों में जूझता मानव सचमुच सफल हो पाता है या मात्र उनमें उलझकर रह जाता है।

राकेश के साहित्य की सभी विधाओं में व्यवस्था की विसंगतियों में जूझते और फिर उसी सिस्टम में खपने के लिये स्वयं भी बईमान होते मनुष्य का अंकन हैं। राजनीति, प्रशासन, नौकरशाह, बाबूवाद और शिक्षा व्यवस्था में आई विसंगतियों का चित्रण राकेश ने बेबाकी और विश्वसनीयता से किया है जो मोहन राकेश के उस परिवेश–प्रतिबद्ध चिन्तक रूप को प्रकट करता है जो पाश्चात्य दर्शन से प्राभवित आभ्यंतरिक निजी द्वन्द्वों, कुण्ठाओं एवं व्यक्तिवादी स्वर को प्रमुखता देता है–अपने समय सत्य को उपेक्षित किये बिना। यह अंकन कहीं तीखे व्यंग्य के रूप में है तो कहीं प्रतीकात्मक रूप में। कहीं अवसाद से उपजी अकर्मण्यता के रूप में, कहीं अवसरवादिता के रूप में तो कहीं पात्र को पाखण्डी बनाती बेईमानी के रूप में है।

नाटक 'आधे–अधूरे' का पुरूष दो उर्फ सिंघानिया व्यवस्था की उस अधिकारी लॉबी का प्रतिनिधित्व करता है जो मातहतों का दोहन–शोषण करते है–

''सिंघानिया की चरित्र सृष्टि आज के नारी–लोलुप,आत्म–प्रशंसक और प्रवंचक अधिकारियों की पृष्ठभूमि में हुई है। इस अधिकारी लॉबी की चाटुकारिता करने की प्रवृति को भी लेखक ने नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के मातुल के माध्यम से परिवेश मं पसरी असाध्य बीमारी के रूप में प्रस्तुत किया है। राजदुहिता प्रियंगुमंजरी रूपी सत्ता की चाटुकारिता की बातें उसे इतिहास के पन्नों से उठाकर आधुनिक बना देती है, वह समकालीन जीवन्त पात्र बन जाता है।

औपन्यासिक दृष्टि से देखें तो व्यवस्था की दमघोंटू यथास्थिति का सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज है 'न आने वाला कल'। मनोज, जो कि उपन्यास का मुख्य पात्र है, स्कूल–प्रशासन क तानाशाही और राजनीति के जोड़–तोड़ एव। घुटन भरे माहौल, बेड़ियों में बॉधते अनुशासन, एकरस भोजन और प्रिंसीपल की तानाशाही के चलते, उलझकर अस्थिर हो गया है और इस विसंगति ने उसके

निजी एवं वैवाहिक जीवन को भी प्रभावित किया हैं। उपन्यास के अन्य पात्र मिस पार्कर, मिस दारूवाला आदि भी इसी व्यवस्था में छटपटा रहे है जिनके माध्यम से लेखक ने मिशनरी स्कूल के नाम पर चलती व्यवस्था के त्रासद परिवेश को चित्रित किया है। जीवन–निर्वाह की विवशता के कारण ये पात्र चाहकर भी यथास्थिति से मुक्त नहीं हो पाते। ''आनुशंगिक रूप में आम तौर पर शैक्षणिक संस्थाओं की कमजोरियों, रेजिडेन्शियल स्कूलों के परिवेश की विसंगतियों और वहॉ के लागों की स्वार्थपरता के घिनौने रूपों पर यह उपन्यास प्रकाश डालता है। यह लेखक की परिवेश सजगता, उसके व्यापक अनुभव और संश्लिष्ट दृष्टिकोण का परिचय देता हैं। उपन्यास के द्वारा लेखक ने व्यवस्था में फैली सामन्तशाही, उसमें घुटते आम आदमी और उसकी अनविार्य विवशता को चित्रित किया है। मनोज द्वारा टिकट लेकर फाड़ देना इस मारक यथास्थिति की भयावहता का चरम रूप है।

कहानी 'जानवर और जानवर' भी शैक्षणिक संस्था की इसी तानाशाह व्यवस्था द्वारा किए जा रहे मानवीय शोषण, जो कि यौन शोषण की सीमा तक आ चुका है, का मार्मिक अंकन है। परिवेश में पसरी निरंकुश व्यक्ति सत्ता की धौंस के कारण पात्रों में उचाटपन है पर आर्थिक सच्चाइयों के बोध के कारण वे यथास्थिति झेलने को विवश है। पालतू कुत्ते से भी कमतर हैसियत में जीते रहने एवं वहॉ बने रहने के लिए प्रयास करते और बेईमान होते मिस नानावती जैसे लोग व्यवस्था के नग्न और उकासऊ रूप को प्रकट करते हैं। कहानी के अन्य पात्र भी व्यवस्था के षड्यन्त्र के आगे हथियार डाल चुके नपुंसक प्रयत्न वाले लोग है।

स्कूल व्यवस्था की क्रूर असलियत का शिकार राजकरनी ('लेकिन इस तरह' की नायिका) भी है, जो सामाजिक व्यंग्य–बाणों का निशाना बनती है और परिवेश से क्षुब्ध होकर आत्महत्या कर लेती है। इसी तरह टीचर्स यूनियन और ट्रेड यूनियन जैसे सामयिक सन्दर्भ के बीच व्यवस्था और सामुदायिक संघर्ष के विरोध भाव में नायक–नायिका के अव्यक्त प्रेम–प्रसंग का त्रासद अन्त 'कटी हुई पतंग' कहानी में चित्रित हुआ है।

शिक्षण संस्थाओं में व्यवस्थागत सामन्तशाही के अतिरिक्त शिक्षकों के नैतिक पतन एवं छात्रों के शोषण की भयावह समस्या को लेखक ने अपने उपन्यास 'अन्तराल' में श्यामा व उसके प्रोफेसर जीजा के सन्दर्भ से प्रस्तुत किया है। उपन्यास के एक अन्य गौण पात्र डॉ. बत्रा की आत्महत्या के द्वारा राकेश ने पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में विवश स्त्री की दयनीय दशा को चित्रित किया है।

आधुनिक शिक्षा जगत् में स्कूल–प्रशासन एवं शिक्षकों के साथ ही शिक्षा व शिक्षार्थियों के गिरते स्तर को भी लेखक ने सूक्ष्मता से देखा, समझा और चित्रित किया है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में शोधार्थियों द्वारा शोधकार्य के नाम पर जो मजाक किया जाता है एवं स्वीकृत भी होता है इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' का रंगिणी–संगिणी प्रसंग। शोधकार्य की भीतरी सच्चाई, खोखलेपन एवं तथाकथित अनुसंधान प्रणाली पर लेखक ने तीखे व्यंग्य के द्वारा कटाक्ष किया हैं। यही कारण है कि ''मूल कथानक से कटे रहने पर भी इसकी उपादेयता, सटीकता और कलात्मकता का रहस्य हैं।

''रंगिणी : देखो, मैं तुम्हें समझाती हूॅ। बात यह है कि राजकीय नियोजन से हम दोनों कवि कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही है। तुम समझती हो कि यह कितना बड़ा और महत्तवपूर्ण कार्य है। परन्तु यहॉ घूमकर हम तो लगभग निराश हो चुकी हैं, यहॉ तो कुछ सामग्री है ही नहीं।

इसके विपरीत एक समर्पित शोधार्थी, जिसने अपना सारा जीवन प्राचीन ग्रन्थों के संग्रह एवं शोध में लगा दिया, की मृत्यु के पश्चात् व्यवस्था की लापरवाह विसंगति के कारण उसके परिवार की दुर्दशा एवं अमूल्य ग्रन्थ–धरोहर की दुर्गति की मार्मिक गाथा है, कहानी 'एक घटना' जो पूॅजीवादी मानसिक दिवालिया व्यवस्था में ज्ञान के अनादर को दर्शाती है। स्वातन्त्रयोत्तर आधुनिक समाज में राजनैतिक व्यवस्था में निहित स्वार्थो के चलते जो बेईमानी, जोड–तोड़ अवसरवादिता एवं मूल्यहीनता बढ़ी है, जिसने न्याय, प्रशासन एवं पत्रकारिता सभी को प्रभावित किया है, के कारण व्यक्ति अपने आप को या तो वंचित अनुभव करते हुए निराश हो जाता है या विवश होकर उसी जोड़–तोड़ के चक्र में फॅसकर पतनशील हो जाता हैं। राकेश के पात्र में व्यवस्थागत स्थिति में जूझते पात्रों का कई स्थानों पर चित्रण है। लेखक 'अन्धेरे बन्द कमरे' उपन्यास राजनैतिक व्यवस्था के खोखलेपन की सूक्ष्मता से पकड़ता है। उपन्यास में शिष्टाचार पार्टियों के नाम पर चल रही जोड़–तोड़ की राजनीति, बनते–बिगड़ते समीकरण में बनते झूठे सम्बन्धों का चित्रण तो है ही साथ ही राजनैतिक व्यवस्था के दबाव में कमजोर पड़ते लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ, पत्रकारिता के पतन का भी चित्रण हैं। मुख्य पात्र हरबन्स परिवेश में व्याप्त नौकरशाही और सत्ता के कुचक्र बोध से व्यथित हैं। अपनी संवेदनशीलता के चलते वह इस भ्रष्ट तन्त्र में शामिल नहीं होता पर व्यवस्था के असहयोग से कुण्ठित भी होता हैं। ''हॉ, मेरा मतलब यही है कि उनकी नजर में मैं एक उपयोगी आदमी हूॅ। आज मैं जिस स्तर पर काम कर रहा हूॅ उसमें जो सरकारी रिकार्ड्स मेरे हाथ से गुजरते है, उन्हें दृष्टि में रखते हुए तुम सोच नहीं सकते कि मैं किस तरह एक उपयोगी आदमी हूॅ। उपन्यास में सुषमा श्रीवास्तव भी इसी व्यवस्था में सफल होने की तिकड़म में सारे हथकण्डे अपनाती पत्रकार हैं जो अपनी संवेदनशीलता को और नैतिक प्रतिमानों को एक तरफ रखकर व्यवस्था के यथार्थ को जीने–जीतने को कटिबद्ध है।

राजनैतिक व्यवस्था के साथ ही प्रशासनिक व्यवस्था में पसरी अकर्मण्यता एवं रिश्वतखोरी ने आम आदमी को जिस एवं जैसे स्तर पर प्रभावित किया है, उसके अनेकों चित्र राकेश ने अपनी रचनाओं में उकेरे है जो उन्हें एक संवेदनशील साहित्यकार के साथ ही उनके परिवेश प्रतिबद्ध चिन्तक नागरिक के रूप में भी प्रतिष्ठित करते है। इस दृष्टि से लेखक की सर्वश्रेष्ठ रचना है कहानी 'परमात्मा का कुत्ता'। 'परमात्मा का कुत्ता' में आदमी के कुत्ते और परमात्मा के कुत्ते का विरोध उभारते हुए राकेश ने सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता,

रिश्वतखोरी और अन्याय से ग्रस्त परिवेश को तोड़ने के लिए बेचैन, संतृप्त, विवश और अपेक्षित व्यक्ति का चित्रण व्यंग्य शैली में किया है। व्यवस्था में लिपटे भ्रष्टाचार से परिचित होकर पहले भौंचक्का और फिर गुस्सा होता यह पात्र, जिसका सरकारी तन्त्र की नेकनीयती से विश्वास उठ गया है, अश्लील होने की सीमा तक अभद्र होकर अपनी कुण्ठा को प्रकट करता है और उसका काम हो जाता है।

'हयादार हो तो सालहा मुँह लटकाए खड़े रहो, अर्जियॉ टाइप करवाओ और नल का पानी पिओ, सरकार वक्त ले रही है, नहीं तो बेहया बनो। चूहों की तरह बिटर–बिटर देखने से कुछ नहीं होगा। भोंको, भोंको, सब के सब भोंको, अपने आप सालों के कान फट जाएँगे। भोंको, कुत्तो भोंको।

प्रशासन व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रश्न उठाती अन्य महत्वपूर्ण कहानियॉ है–कम्बल, क्लेम, एक ठहरा हुआ चाकू आदि।

महानगरीय जीवन में जीकर राकेश ने उसकी व्यवस्थागत विद्रूपताओं और विरूपताओं को स्वयं देखा, भोगा था और उसमें असुरक्षित जी रहे आम आदमी के संघर्ष, व्यवस्था के असहयोग और फलस्वरूप अस्मिता भय से आकुल मानव प्रतिमा को भी उन्होंने बहुत नजदीक से देखा था।

'एक ठहरा हुआ चाकू' का नायक एक असामाजिक तत्व का विरोध करने पर उसके आतंक का शिकार होतो है और जब पुलिस में रिपोर्ट लिखवाता है तो पाता है कि व्यवस्था की दादागीरी से डरकर धरना स्थल पर उपस्थित कोई भी आदमी गवाही व शिनाख्त को राजी नहीं होता। ''गुण्डों द्वारा आतंकित और संत्रस्त परिवेश का जीवंत चित्रण यहॉ है। सुरक्षा और अस्तित्व का संकट आज के मानव की सबसे बड़ी समस्या है।

इसी तरह की कहानियॉ है 'कम्बल' और 'क्लेम'। देश–विभाजन के पश्चात् विस्थापितों की आहत संवेदनाओं और मानसिक व्यथा का अंकन तो राकेश ने किया ही है, साथ ही उनकी भयावह आर्थिक विषमताओं मेंप्रशासकीय व्यवस्था किस प्रकार तोड़कर उन्हें झूठा व अमानुषिक रूप तक स्वार्थी कर देती है यह भी कहानियों में चित्रित हुआ है।

फर्जी पीड़ित बल चौगुना क्लेम भरकर अधिक रकम पाने की कोशिश से आहत होकर पत्नी का पति को इसके लिए लताड़ना इसी कुण्ठाजनित मूल्य विद्यटन को दर्शाता है।

अभाव स्वयं ही जीवन–मूल्यों को कम विचलित नहीं करते, उस पर व्यवस्था का सहयोग न मिले तो मानव किस तरह हदयहीन हो जाता है, 'कम्बल' कहानी श्रेष्ठ उदाहरण है। पत्नी एक ही कम्बल होने पर शरणार्थी केम्प में ठिठुरती जाड़े की रात में बालक के बहाने स्वयं कम्बल ओढ़ लेती है जबकि उसका पति ठण्ड से ठिठुर कर मर जाता है। यह संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है। यहॉ व्यवस्था के क्रूर यथार्थ से पत्थर बने मानव का राकेश ने चित्रण किया है।

समसामयिक आधुनिक व्यवस्था में तथाकथित प्रजातन्त्र के बाद भी, राजनैतिक दबाव, प्रशासन की धौंस, नौकरशाही के भय में नौकरी पर बने रहने के तनाव, महॅगाई एवं लगातार चल रहे षड्यन्त्रकारी चक्रों में असुरक्षित राजकीय कर्मचारियों को भी आत्यंतिक रूप से प्रभावित किया है। यह प्रभाव हमें दो रूपों में देखने को मिलता है–एक, उसके विवश, लगातार उपयोग होते लाचार रूप में और दूसरे, उसकी कुण्ठा से उपजी प्रतिक्रिया के विद्रोही, अविश्वासी और अकर्मण्य रूप में।

राज्य व्यवस्था के अधीन कार्यरत मानव न चाहते हुए भी स्वयं उनके हाथ की कठपुतली बन जाता है, इसका बहुत जीवंत उदाहरण है एकांकी 'सिपाही की मॉ'। लेखक ने पात्रों के माध्यम से उच्चस्थ शासन व्यवस्था पर एक वाजिब सवाल उठाया है कि दो देशों के युद्ध में सदैव आदमी को ही क्यों अपनी जान व अस्मिता दॉव पर लगानी पड़ती है। युद्ध के परिणाम जो भी हों, आत्मा व्यवस्था सदैव सुरक्षित रहती है और दोनों पक्षों के सिपाहियों तथा उनके परिजनों को दुःख दर्द व चिन्ता ही मिलती है। लेखक ने मार्मिक संवेदना के साथ सिपाही की मॉ बिशनी के माध्यम से इस विसंगत व्यवस्था से उपजी टीस को व्यक्त किया है। भिक्षार्थी बर्मी लड़कियॉ भी युद्ध से उपजी मानव दुर्दशा का प्रतीक है। एकांकी के अन्य पात्र भी इसी थोपी हुई दुश्मनी के बवंडर में तिनके से उड़ रहे हैं जो देशों की राजनैतिक दुश्मनी में वैश्विक मानव की त्रासदी के संवाहक है। अपनी अर्थवत्ता में सिपाही की मॉ बिशनी का चरित्र सार्वभौमिक, सार्वकालिक है जो राकेश जी की मानव मात्र के प्रति चिन्ता को दर्शाता है। व्यवस्था की इसी थोपी हुई दुश्मनी में लड़कर मरते फौजी कर्मचारियों के दुखान्तों की त्रासद कथा है कहानी 'मिट्टी के रंग'। महायुद्ध की विभीषिका ने मानव–प्रेम और सम्बन्धों को कितना प्रभावित किया है, इस कहानी का मार्मिक अन्त स्पष्ट कर देता है।

व्यवस्था की विद्रूपताऍ जहॉ आम आदमी को अपना शिकार बनाती है वहॉ इन विद्रूपताओं की प्रतिक्रियास्वरूप कर्मचारियों में निकम्मापन व निर्णयहीनता आ गई है। स्वयं को सुरिक्षित रखकर सरकार ने 'नकद जॅवाई' वाली मानसिकता में जीती 'बाबूशाही' की समानान्तर व्यवस्था को भी राकेश ने तीखे व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है। कहानी 'परमात्मा का कुत्ता' के अतिरिक्त अपने प्रसिद्ध नाटक' आषाढ़ का एक दिन' में अनुस्वार और अनुसासिक की योजना पूरी तरह से बाबूशाही की निकम्मी कार्य–पद्धति को बताती है। काम करने के नाम पर जुबानी जमाखर्च और ऊपरी दिखावा करते ये दो राज्य–कर्मचारी जब तिनका हिलाए बगैर ही काम पूरा करके चल देते हैं तो ऐतिहासिक नौकरशाही के स्थान पर स्वातन्त्रयोत्तर भारत की 'बाबू व्यवस्था' के नुमाइन्दे बन जाते है।

इसी तरह 'बहुत बड़ा सवाल' एकांकी भी व्यवस्था के इसी यथार्थ को तीखी व्यंग्यात्मकता के साथ खोलता है, जहॉ सरकारी कर्मचारी पात्रों को मालूम है कि इस गले पड़ी व्यवस्था में कुछ भी (अपनी ओर से) नवीन निर्णय लेने का खतरा नहीं उठाया जा सकता। इसलिए वे भी सिवा मीटिंग्स के कुछ करने के इच्छुक नहीं है। चुभती ह्यूमर शैली में लिखे इस एकांकी के पात्र 'जन्नत की हकीकत' की तरह सच को जानते है, क्योंकि वे इसके

नियोक्ता भी है और भोक्ता भी। प्रस्ताव पारित करने के नाम पर नाश्ता खाने, एक–दूसरे की टॉग खिंचाई करने और बहिष्कार के नाम पर निर्णयहीन स्थिति में उठ जाने के अतिरिक्त ये पात्र कुछ नहीं करते।

वस्तुतः व्यवस्था में कुछ इस तरह की प्रयत्नहीनता फैली हुई है कि प्रत्येक व्यक्ति उसका अंग हैं। लेखक ने इस एकांकी के चपरासियों के आपसी वार्तालाप द्वारा परिवेश में बढ़ते सरकारी तन्त्र में कर्मचारियों के मानसिक दिवालियापन की पोल खोली है।

''श्याम भरोसे : बाबू लोग चले गए?
राम भरोसे : चले गए।
श्याम भरोसे : क्या–क्या पास कर गए?
राम भरोसे : पास कर गए कि राम भरोसे राम भरोसे के घर में रहेगा और श्याम भरोसे श्याम भरोसे के घर में।

और सबसे बड़ी त्रासदी ये है कि सभी इस व्यवस्था की बेईमानी और अकर्मण्यता के इस कदर अभ्यस्त हो गए है कि ईमानदारी, आदर्श और प्रगतिशीलता को भी सन्देह की दृष्टि से देखते है। 'नए बादल' कहानी का चौकीदार भ्रष्ट परिवेश की व्यवस्था को मन में धारण किए जी रहा पात्र है जो समाज में हर स्थान पर गन्दगी ही देखता है और उसके इस बोध में जब कोई नई बात टकराती है तो वह उस सच से असमंजस में पड़ जाता है।

इन व्यवस्थाओं की चारों तरफ से होती असहनीय बौछार में आम आदमी की घुटती, छटपटाती और भय की हदों से गुजर कर पगलाती अस्मिता पीड़ा को लेखक ने अपने सर्वाधिक चर्चित एवं प्रयोगधर्मी एकांकी 'छतरियॉ' में चित्रित किया है। पश्चिम के एब्सर्ड नाटक की तर्ज पर रचित इस एकांकी मं मनुष्य की निजता को लीलने को आतुर परिवेश में उसके संकुल संघर्ष को एक पात्र के द्वारा दर्शाया है।

एक अकेला आदमी, व्यवस्था के कुकुरमुत्ते, विसंगतियों का शोर और.....बस। इन व्यवस्थागत विगंगतियों के शोर के बीच अकेला खड़ा आदमी अपनी लड़ाई अकेला ही प्राणपण से लड़ रहा है कि कहीं वह स्वयं को खोकर अकेला ही न रह जाए। व स्वतन्त्र, उन्मुक्त होकर जीना चाहता है पर चाहकर भी परिवेश के घेराव से नहीं बच पाता। एक पागल की बकझक और जुलूस के माध्यम से वर्तमान उठापटक में असुरक्षित अस्मिताबोध में भरे मानव की हड़बडाहट, अनिश्चयात्मकता और असुरक्षाबोध का तनाव सामयिक यथार्थ संकेतों से ही आता है। संविधान सभाऍ, प्रजातन्त्रीय (?) चुनाव, गोलियों की आवाज और ढेर सारी गालियॉ।

''आकार हीन, नामहीन,
कैसे सहूँ, कब तक सहूँ
अपनी यह निरर्थकता?
जीवन को छलता हुआ जीवन से छला गया। .....
पहचान मेरी कोई भी नहीं आज तक।

स्पष्ट है कि राकेश ने अपने लेखन में महासमरोत्तर अवसादग्रस्त वैश्विक बदलावों के साथ ही लम्बी गुलामी से नए–नए मुक्त हुए अपने देश की त्रासदियों एवं विसंगनियों को गहराई से समझा व अंकित किया है। 'साहित्य जीवन के लिए सिद्धान्त' के हिमायती मोहन राकेश की स्पष्ट मान्यता है कि–'' प्रतिबद्धता की बात में अपने आप से या अपनी कला के सन्दर्भ में न सोचकर जीवन और उसके यथार्थ के सम्बन्ध में सोचता हूँ। मैं अपनी कला से प्रतिबद्ध हूँ, क्योंकि अपने परिवेश और उसके निरन्तर बदलते यथार्थ से प्रतिबद्ध हूँ।

व्यवस्थाजन्य विसंगतियों को दर्शाने के लिए राकेश ने ऐतिहासिकता से लेकर आधुनिक एवं पारम्परिकता से लेकर प्रयोगधर्मिता तक का सहारा लिया है। अवसाद की स्थितियों को कई स्थानों पर ह्यूमर के माध्यम से प्रस्तुत किया है तो कहीं सपाट बयानी से व कहीं प्रतीकात्मकता की चोट से प्रभावी बनाया हैं। रंगिणी–संगिणी प्रत्येक युग में है तो अनुस्वार अनुनासिक भी सदैव रहेंगे। आधुनिक परिवेश में मानव 'परमात्मा का कुत्ता' बनकर भी जीता है तो कहीं व्यवस्था की दमघोंटू 'छतरियों' के बीच बौंराया भटकता भी दिखाई देता है।

राकेश ने सामयिक विसंगतियों से लदे, झुककर दोहरे होते मानव की आत्मवंचक स्थिति को अपने कथा–साहित्य में सूक्ष्मता से व्यक्त किया है।

निष्कर्ष

प्रेम ही जीवन है। सच्च प्रेम होने पर ही भक्त को ईष्वर की प्राप्ति होती हैं। प्रेम के मार्ग में बाधाऍ आती है किन्तु भक्त इन बाधाओं से विचलित नहीं होता हैं सूफी कवियों ने आध्यात्मिक प्रेम का आधार हिन्दु राजाओं की कथाओं से ग्रहण किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राजेश्वर प्रसाद सिंह–मोहन राकेश का नाट्य–शिल्प प्रेरणा और स्त्रोत, पृष्ठ 173।*
2. *डॉ. सुजाता चतुर्वेदी–मोहन राकेश का साहित्य, पृ. 127*
3. *मोहन राकेश–बकलम खुद : आज की यह संवादहीनता, पृ.255*
4. *आषाढ़ का एक दिन : मोहन राकेश, पृ 57–58*
5. *अन्धेरे बन्द कमरे– मोहन राकेश, पृ. 127*
6. *सुषमा अग्रवाल– कहानीकार मोहन राकेश, पृ.54*
7. *परमात्मा का कुत्ता : मोहन राकेश (सं) मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियॉ, पृ.326*
8. *सुषमा अग्रवाल– कहानीकार मोहन राकेश, पृ.961*
9. *आषाढ़ का एक दिन : मोहन राकेश, पृ 64*
10. *बहुत बडा सवाल–(सं) अण्डे के छिलके : मोहन राकेश, 101*
11. *छतरियॉ– (सं) अण्डे के छिलके : मोहन राकेश, पृ. 46*
12. *मोहन राकेश – साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि पृ. 36*